ओ३म्



सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला

समुल्लास 4 पर आधारित

गृहस्थाश्रम का महत्व

प्रकाशक : आर्य समाज, अजमेर मूल्य 3.00

Scanned with CamScanner

प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले (आर्य) द्वारा संपादित सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला के 15 पुष्प

भाग	नाम	लेखक का नाम	मूल्य
1.	ईश्वर एक नाम अनेक	प्रो. बुद्धि प्रकाश आर्य	3.00
2.	आदर्श माता–पिता	प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु	3.00
3.	शिक्षा और चरित्र निर्माण	प्रो. भूदेव शास्त्री	4.00
4.	गृहस्थाश्रम का महत्त्व	आचार्य ओंकार मिश्र प्रणव	3.00
5.	संन्यासी कौन और कैसे हो ?	रासासिंह विद्यावाचस्पति	3.00
6.	राज्य व्यवस्था	प्रो. प्रशान्त कुमार वेदालंकार	5.50
7.	ईश्वर और वेद	डॉ. सूर्यदेव शर्मा, डी. लिट्	4.00
8.	जगत् की उत्पत्ति	डा. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	4.00
9.	स्वर्ग और नरक कहाँ है ?	पं. यशपाल, आर्य बन्धु	4.00
10.	क्या चौके चूल्हे में धर्म है ?	प्रो. देव शर्मा वेदालंकार	3.00
11.	हिन्दू धर्म की निर्बलता	प्रो. भवानीलाल भारतीय	4.00
12.	बौद्ध और जैन मत	पं. मंजुनाथ शास्त्री	3.00
13.	वेद और ईसाई मत	श्री रामस्वरूपजी रक्षक	3.00
14.	इस्लाम और वैदिक धर्म	डा. श्रीराम आर्य	4.00
15.	सत्य का अर्थ तथा प्रकाश	प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले	3.00

आचार्य दत्तात्रेय जी आर्य द्वारा लिखित पुस्तकें

1.	आचार संहिता	1.00
2.	आर्य समाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं	50.00
3.	हमारी राष्ट्रीयता का आधार	2.00
4.	देश धर्म और हिन्दू समाज को आर्य समाज की देन	1.00
5.	मेरी तीसरी विदेश यात्रा के संस्मरण	6.00
6.	आर्य शिक्षण संस्थाओं का भविष्य	5.00
7.	दा आर्य समाज (The Arya Samaj)	2.00
8.	आर्य शिक्षण संस्थाओं की परिचय निर्देशिका	12.00
9.	आर्य समाज का वर्तमान और भविष्य	10.00
10.	The Arya Samaj Hindu without Hinduism	125.00
11.	आर्य समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता	8.00
12.	कर्मवीर पं. जियालाल का संक्षिप्त जीवन चरित्र	5.00

अन्य प्रकाशन

1.	आर्य समाज अजमेर का इतिहास	50.00
2.	सांस्कृतिक कार्यक्रम पथ दर्शिका	30.00
3.	अजमेर की आर्य शिक्षण संस्थायें	3.00
4.	धर्म शिक्षा (भाग 1 से 11 तक) सैट (20% कमीशन)	100.00
5.	सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ माला (सैट) (20% कमीशन)	20.00

प्राप्ति स्थान आर्य समाज अजमेर

Scanned with CamScanner

ओ३म्

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला—भाग ४

गृहस्थाश्रम का महत्त्व

लेखक :

आचार्य ओंकार मिश्र 'प्रणव'

शास्त्री, एम. ए.

सम्पादक :

दत्तात्रेय वाब्ले (आर्य)

पू. प्रिंसिपल, दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज, अजमेर

प्रकाशक : **आर्य समाज, अजमेर**

तृतीय संस्करण

तृतीय आवृत्ति 1999 | प्रतियाँ 2000 | मूल्य : 3.50 पैसे

Scanned with CamScanner

डॉ. सूर्यदेव शर्मा

1981 ई. में सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित इस सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ माला के प्रथम संस्करण के प्रकाशन के लिए आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् आर्य समाज अजमेर के भू. पूर्व मन्त्री श्रीयुत डॉ. सूर्यदेव शर्मा, शास्त्री, साहित्यालंकार, एम. ए., एल. टी. डी. लिट् ने रुपये 12,000 की राशि आर्य समाज अजमेर को दान में दी थी। इस अनुकरणीय और उदार सहायता के लिये आर्य समाज की तथा अपनी ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

दत्तात्रेय (वाव्ले) आर्य

प्रधान

आर्य समाज, अजमेर

मुद्रक : **श्री आर्य प्रिण्टर्स**, केसर गंज, **अजमेर**

दूरभाष : 431464, 424850

Scanned with CamScanner

प्रस्तावना

वर्ण और आश्रम व्यवस्था हिन्दू समाज की विशेषताएँ समझी जाती हैं। समाजशास्त्र की दृष्टि से भी उनका वैज्ञानिक आधार और महत्त्व है। किन्तु दोनों के पीछे जो प्राचीन वैदिक आदर्श थे कालान्तर में विकृत होते गये। वर्ण व्यवस्था धीरे–धीरे जन्मगत जात–पांत के रूप में हिन्दू समाज के लिए ही नहीं सारे देश की राष्ट्रीय एकता के लिये भी एक अभिशाप सिद्ध हो रही है। इसी प्रकार मनुष्य जीवन को 4 भागों में बांट कर आश्रम व्यवस्था की जो मर्यादायें निश्चित की गई थीं, उनकी भी व्यवहार में उपेक्षा होने लगी। परिणामस्वरूप व्यक्ति और समाज के लिए उनका अपेक्षित उपयोग भी समाप्त हो रहा है। आधुनिक युग के महान् क्रान्तिकारी विचारक महर्षि दयानन्द ने जहाँ गुण कर्म को आधार मानकर जन्मगत जात–पांत का विरोध किया वहाँ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तथा संन्यास के प्राचीन आदर्शों को पुनर्जीवित करने का भी प्रयत्न किया।

कर्म, भाग्य, वैराग्य और माया आदि की पौराणिक विकृतियों के कारण गृहस्थाश्रम या तो विषय भोग का साधन मात्र बन गया या उसे एक आवश्यक बुराई समझकर उसकी निन्दा और उपेक्षा की जाने लगी। बाल–विवाह, सती–प्रथा, पर्दा, अशिक्षा, वैधव्य आदि धार्मिक अन्धविश्वासों के कारण गृहस्थाश्रम स्त्रियों के शोषण और उन पर अनेक अमानवीय अन्याय और अत्याचारों का माध्यम बन गया। ऋषि दयानन्द ने विवाह में स्त्रियों को पुरुष और पत्नी को पति के समकक्ष स्थान और अधिकार देकर उनका महान् उपकार किया है। स्वयं आजन्म ब्रह्मचारी और एक आदर्श संन्यासी होकर भी उन्होंने गृहस्थाश्रम को संसार के समस्त व्यवहारों का आधार बताकर उसके निन्दकों की

Scanned with CamScanner

समालोचना की है और सुखी गृहस्थ के लिए स्त्री और पुरुष दोनों के समान उत्तरदायित्व पर बल दिया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने ब्रह्मचर्य को गृहस्थ की नींव मानकर कन्याओं के स्वयंवर अर्थात् स्वेच्छा से पति के निर्वाचन का अधिकार स्वीकार किया है। इसी प्रकार सन्तानों की निश्चित संख्या का भी उन्होंने विवेचन किया है। यह संख्या समय, काल और देश की परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहना स्वाभाविक है, किन्तु संख्या के नियमन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके उन्होंने हमारी एक वर्तमान, सबसे बड़ी, समस्या के प्रति दूरदर्शितापूर्ण मार्ग निर्देशन किया है। बाल–विवाह का विरोध तथा पांचवें समुल्लास में बहुत संतान से बड़ी हानि होती है स्वामी दयानन्द की यह स्पष्ट चेतावनी भी इसका प्रमाण है। स्वामीजी के गृहस्थाश्रम सम्बन्धी इन तथा अन्य विचारों का उनके द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में विस्तृत विवेचन है, विद्वान् लेखक की वर्तमान पुस्तक उसी पर आधारित है।

दत्तात्रेय आर्य

सम्पादक

दे वैदिक पुस्तकालय मुलबड़े

आचार्य चन्द्रमणि

Scanned with CamScanner

गृहस्थाश्रम का महत्त्व

महर्षि दयानन्द के मौलिक ग्रन्थों में 'सत्यार्थ प्रकाश' उन्नीसवीं शताब्दी का एक अद्वितीय, अद्भुत महान् ग्रन्थ है। इसको कतिपय विचारकों ने तो मतों का 'इन्साइक्लोपीडिया' (विश्वकोष) कहकर पुकारा है। 'सत्यार्थ प्रकाश' के मनन पूर्वक अध्ययन से शतशः मनुष्यों को जीवन–दिशा का प्रतिबोध हुआ है। वस्तुतः महाभारत के पश्चात् तत्कालीन प्रचलित मतमतान्तरों की विवेचनात्मक समालोचना से युक्त इस प्रकार का कोई ग्रन्थ किसी विशिष्ट विचारक विद्वान् ने नहीं लिखा।

प्रस्तुत लघु निबन्ध 'सत्यार्थ प्रकाश' के चतुर्थ समुल्लास के धरातल पर आधारित है। इस समुल्लास में ऋषिवर ने 'गृहस्थाश्रम' का विवेचन किया है। इस समुल्लास की समाप्ति पर ऋषि ने एक प्रश्न का समाधान करते हुए ऋषिराज ने समस्त आश्रमों को सुख सुविधा एवं सहायता देने के कारण गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों से ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ माना है। इस मान्यता की पुष्टि में मनु महाराज के जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं उनका भी आशय यही है कि जैसे सभी नदी, नद बहते हुए समुद्र में जाकर विश्राम करते हैं, जैसे प्राणवायु के आश्रय से सभी प्राणी जीवित तथा जाग्रत रहते हैं, वैसे सभी आश्रमवासी गृहस्थाश्रम से समस्त आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, अतः गृहस्थाश्रम ही बड़ा है। वस्तुतः यह तर्क समझ में आने योग्य भी है, क्योंकि जितने राष्ट्रीय कार्यों का सम्पादन सामाजिक, राजनीतिक एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों में होता है, उसमें सर्वाधिक अंशदान गृहस्थाश्रम का ही होता है। ध्यान रहे यहाँ मनु महाराज अथवा ऋषिवर का तात्पर्य ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, अथवा

Scanned with CamScanner

संन्यास आश्रम की अवहेलना करना नहीं है, किन्तु कार्य, विस्तार–क्षेत्र एवं उपयोगिता की भावना से गृहस्थाश्रम को सर्वोत्तम मानना है।

प्रायः यह बात सर्वविदित है कि वैदिक संस्कृति का मूलाधार वर्णाश्रम व्यवस्था है। वर्ण मानव के व्यक्तिगत जीवन का प्रतीक है तो आश्रम मानव के सामाजिक जीवन का प्रतीक है। क्योंकि ब्रह्मचर्य आश्रम में ज्ञान तथा बल सञ्चित होता है, गृहस्थ में सञ्चित का व्यय करना होता है। वानप्रस्थ में पुनः गुणों के अनुसार तप–तेज बढ़ाना होता है फिर संन्यास आश्रम में आग की तरह "वसुधैवकुटुम्बकम्" की भावना में सब का (विभाग) बाँटना ही होता है।

सामान्यतः जो लोग इन आश्रमों में से गृहस्थाश्रम को केवल विषयवासना की तृप्ति का केन्द्र अथवा मात्र सन्तान उत्पत्ति का ही मुख्य आधार जानते हैं, वे वस्तुतः इस आश्रम की महत्ता एवं शालीनता से कोसों दूर हैं। वे इस आश्रम के पवित्र ध्येय एवं मर्यादाओं की भी जानकारी नहीं रखते हैं।

सचमुच 'संस्कार विधि' के विवाह प्रकरण की भूमिका में जो उद्धृत है वह मन्त्र ही इस आश्रम के पवित्र ध्येय एवं मर्यादाओं का परिचायक है। उद्धृत मन्त्र इस प्रकार है –

समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ ।
सम्मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ।।

ऋ १०.८५.४७

भावी दम्पत्ति इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए यह आशय प्रकट करते हैं कि हम दोनों का प्रत्येक शुभ कार्य में विचारों का पूर्ण सामञ्जस्य इस प्रकार का होगा जिस प्रकार दो पात्रों का जल एक पात्र में एकरूपता धारण कर लेता है। यही भावना राष्ट्र के लिये आत्म–त्याग व बलिदान की प्रेरणा दे सकती है। यही विचार–शृंङ्खला "सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय" का साकार रूप

Scanned with CamScanner

धारण कर सकती है।

जो दो प्राण वैवाहिक व्यवस्था की छत्रछाया में –

"मम व्रते ते हृदयं दधामि, ममचित्तमनुचितं तेऽस्तु" के व्रती बनकर सर्वात्मना देश, जाति एवं राष्ट्र–हित के लिए समर्पित होते हैं, वस्तुतः वे ही गृहस्थ कहलाने के सच्चे अधिकारी हैं। गृहस्थाश्रम में रहकर सुयोग्य सन्तानोत्पत्ति तथा माता, पिता आचार्य की यथेष्ट सेवा से पितृ –ऋण की उन्मुक्ति मानी गई है। अतः गृहस्थाश्रम मानव के समाजिक जीवन की एक सुनहरी कड़ी है, प्रभु निर्दिष्ट अमूल्य धरोहर है, सृष्टिक्रम सञ्चालन का एक विशिष्ट वरदान है।

गृहस्थाश्रम का अधिकार एवं समय

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ।। मनुः (3/2)

मनुस्मृति की इस घोषणा के अनुसार जिसने ब्रह्मचर्य सदाचारपूर्वक चारों वेदों का, तीन वेदों का, दो वेदों का अथवा न्यूनातिन्यून एक वेद का सङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है, तथा जिसने ब्रह्मचर्य (मुख्यतः वीर्य रक्षा) व्रत का पूर्ण परिपालन किया है, उसी को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने का अधिकार है। प्राचीन काल में इस पुण्य परिपाटी का अधिकाधिक पालन होता था, यह प्राच्य धर्म–शास्त्रों से तथा ऐतिहासिक विवरणों से स्पष्ट है। इस बिगड़े समय में भी ऋषिवर इस प्रकार की पवित्रता के स्वप्नद्रष्टा थे उनकी यह तीव्र इच्छा थी कि मानव मात्र विशुद्ध नागरिक की भूमिका निभाये जिससे कि विश्व सच्चे सुख शान्ति का अन्वेषण कर सके।

पूर्ण सदाचारी व्यक्तियों द्वारा ही गृहस्थाश्रम प्रवेश से कल्याण की सम्भावना की जा सकती है किन्तु वर्तमान काल में तो इस व्यवस्था का कहीं भी अस्तित्व नहीं है।

Scanned with CamScanner

स्वामीजी की मान्यता के अनुसार चरित्र के साथ उत्तम स्वास्थ्य भी विवाह के लिये आवश्यक शर्त होनी चाहिये क्योंकि कुछ रोग वंशपरम्परागत होते हैं जो सन्तान में उत्तारोत्तर क्रमशः चले आते हैं। जिनसे मानव समाज में अस्वस्थता, दुर्बलता आदि दोषों के प्रसार की सम्भावना हो सकती है जो किसी प्रकार सामाजिक उन्नति एवं विकास के लिये वाञ्छनीय नहीं है।

विवाह का समय

जिस समय भारतवर्ष में महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ उस समय यहाँ बाल तथा वृद्ध–विवाहों का प्रचलन जोरों पर था। जिससे सम्पूर्ण मानव समाज अत्यन्त दुर्बलेन्द्रिय, नाना प्रकार के भयानक रोगों से आक्रान्त, विद्यादि शुभ गुणों से हीन, बलहीन, पराधीन, कलाहीन चन्द्रमा, की तरह क्षीण होता चला जा रहा था। निश्चित् है, जो जाति धार्मिक शास्त्रों की मर्यादा से विमुख होकर मन–माने रीति–रिवाजों के अनुसार जीवन यापन करने लग जाती है, उसको इस प्रकार के दुष्परिणाम भोगने ही पड़ते हैं।

सामाजिक दुरवस्था का अवलोकन करते हुए सम्भवतः करुणानिधान ऋषिवर ने प्रस्तुत विषय पर भी गहन मनन एवं प्रौढ़ शास्त्रीय अध्ययन के आधार पर विचार व्यक्त किए। उस समय ऋषिवर के समक्ष –

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ।।
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ।।

इत्यादि "शीघ्रबोधादि" ग्रन्थों की व्यवस्थानुसार मनुष्य कन्याओं के विवाह अल्पायु में ही कर देते थे; क्योंकि ऐसा न करने पर उनको नरक–पतन का भय रहता था। इसका भयानक परिणाम यह हुआ कि देश में सहस्त्रशः बाल–विधवाओं का करुण क्रन्दन

Scanned with CamScanner

सुनने को मिलता था। मनुष्य समाज में अनाचार, व्यभिचार, गर्भपात तथा वेश्या–वृत्ति का बाजार गर्म था। वेश्याओं के सम्पर्क से समाज में विविध प्रकार के रोग आक्रमण कर रहे थे, तथा समाज सर्वथा आचारहीन होकर पतन के कगार पर खड़ा था।

ऋषि दयानन्द ने इस विषय पर महामुनि धन्वन्तरि चरक, आदि आयुर्विज्ञान के महान् विद्वानों के चरक संहिता सुश्रुतादि ग्रन्थों के आधार पर पूर्वापर विचार कर विवाह का जो समय निर्दिष्ट किया है, वह वैज्ञानिक लाभदायक एवं सर्वथा व्यावहारिक है। इसके अनुसार विवाह के समय स्त्री पुरुष की आयु न्यूनातिन्यून क्रमशः 16 तथा 25 वर्ष होनी चाहिए। इससे भी जितने अधिक समय में विवाह होगा उतना ही गृहस्थों को स्वास्थ्य–शिक्षादि के दृष्टिकोण से लाभप्रद सिद्ध होगा। ऋषिवर ने विवाह का अधिकाधिक जो समय माना है, वह स्त्री का 24 वर्ष और पुरुष का 48 वर्ष है। भारत जैसे गरीब देश के लिये आज कल बढ़ती हुई जनसंख्या एक अभिशाप है। परिवार–नियोजन की दृष्टि से भी 25 वर्ष से कम की आयु में विवाह न करने का नियम होना चाहिये। हाँ, यह नियम विवाहेच्छुक स्त्री–पुरुषों के लिए ही है। जो आजन्म संयमी, सदाचारी, ब्रह्मचारी तथा परोपकारी बनकर जीवन व्यतीत करना चाहें, उनके लिए इस नियम की अनिवार्यता नहीं है। इस विषय में एक बात और विचारणीय है –

"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।"

वेद के इस प्रसिद्ध मन्त्रांश के आधार पर युवा पुरुष और युवती कन्या का विवाह वैध माना गया।

प्रस्तुत विवाह प्रकरण में एक विशेष निर्देश यह भी है; विवाह माता–पिता की सलाह किन्तु लड़के लड़की की सम्मति से होना चाहिये ताकि दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव, बल आदि की समानता के पूर्ण परिचय के कारण पारस्परिक, स्वाभाविक अनुकूलता–प्रसन्नता

Scanned with CamScanner

से शुभ–गुण–भूषित, श्रेष्ठ सन्तति–समृद्धि से मानव समाज विविध प्रकार की विशेषताओं से विभूषित हो सके। पारस्परिक स्वाभाविक प्रसन्नता दाम्पत्य सुख का मूल मन्त्र ही मानना चाहिए। इस प्रसङ्ग में उल्लिखित मनुस्मृति के प्रमाणों का सारांश भी यही है कि जिस कुल में स्त्री पुरुष सर्वदा, सर्वथा आपसी व्यवहार से प्रसन्न चित्त रहते हैं, उसी कुल में, आनन्द, लक्ष्मी, कीर्ति और सौभाग्य का निवास होता है। इसलिए समुचित अवस्था में स्त्री–पुरुष की स्वेच्छा से ही विवाह होना सुखकारक प्रतीत होता है।

इसी अनुक्रम में वहाँ –

"युवा सुवासाः परिवीत आगात्
आधेनवो धुनयन्तामशिश्वी;
पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणाः"

ऋग्वेद के जो तीन प्रमाण उद्धृत हैं, उनका भी सारांश यही है, कि युवा और युवती पूर्ण संयमी, सदाचारी रह कर स्वेच्छा से विवाह करें जिससे कि वे शारीरिक एवं आत्मिक बल से संयुक्त होकर युवा और युवतीजन सामाजिक समुन्नति में सहायक सिद्ध हो सकें। यहाँ यह भी प्रकट है, कि प्राचीन काल में आर्यावर्त्त में सब ऋषि मुनि, राज़ा, महाराजा तथा सर्वसाधारण आर्य लोग इसी रीति–नीति से स्वयंवर करते थे, तभी यह देश प्रत्येक क्षेत्र में समुन्नत एवं समृद्ध था। जब से इस प्रकार के 'स्वयंवर विवाह' के स्थान पर माता पिता के द्वारा अल्पायु में बेजोड़ विवाह होने लगे तभी से यह आर्यावर्त्त देश पतन के गहरे गर्त्त में गिर कर नाना प्रकार के कष्ट भोग रहा है।

विवाह किसका किसके साथ हो ?

विवाह जन्मगत जात–पात के आधार पर न होकर वर्णानुक्रम से युवा और युवती का ही होना चाहिए। इसके लिए वर्ण–व्यवस्था

Scanned with CamScanner

गुण, कर्म, स्वभावानुसार ही मानी गई है। केवल जन्म परम्परानुसार ब्राह्मणादि वर्ग का विवाह वैध नहीं है। गुण, कर्म स्वभावानुसार वर्ण–व्यवस्था के अनेक उदाहरण उपनिषद् महाभारतादि ग्रन्थों में प्राप्त हैं। जैसे कि अज्ञात कुल जाबाल ऋषि माने गये; विश्वामित्र क्षत्रिय और मातङ्ग चाण्डल कुलोत्पन्न होते हुए भी तपचर्या एवं देव समान दिनचर्या से ब्राह्मण माने गये हैं। इसलिए उत्तम विद्या, शिक्षा–सम्पन्न तपोधन, त्यागी वेद श्रमी, आस्तिक पुरुष चाहे जिस कुल में उत्पन्न हुआ हो वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है और जो ब्राह्मण कुलोत्पन्न विद्याहीन, वेद से विमुख, तपश्चर्या से रहित मनुष्य है, वह मूर्ख शूद्र ही कहलाने योग्य है। क्योंकि –

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।। मनु (2/28)
जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते ।
वेदपाठी भवेद् विप्रो ब्रह्मं जानति ब्राह्मणः ।।

इन प्रमाणों से भी यह स्पष्ट है कि स्वाध्याय, व्रत, होम, पाँच महायज्ञ, उत्तम सन्तानोत्पत्ति से ही यह शरीर ब्राह्मण का बनता है, क्योंकि जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं, द्विज संज्ञा (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) कर्मानुष्ठान से ही होती है। वेदाध्ययन में रत और ब्रह्म का ज्ञान, प्रवचन करने वाला ब्राह्मण होता है। अतः जन्ममूलक वर्ण व्यवस्था की मान्यता मानव समाज में बुद्धि तथा विवेक की विडम्बना मात्र ही है। गुण, कर्म, स्वाभावानुसार वर्ण व्यवस्था की प्रतिष्ठा में ऋषिराज की अत्यन्त व्यावहारिक युक्ति तर्क द्रष्टव्य है। उन्होंने लिखा है–

'जो कोई रजवीर्य के योग से वर्ण व्यवस्था माने और गुण कर्म से न माने तो उससे पूछना चाहिए कि जो अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो, उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते ? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के

Scanned with CamScanner

कर्म छोड़ दिए; इसीलिए वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यही सिद्ध होता है, जो ब्राह्मणादि के उत्तम कर्म करते हैं, वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्ण होके नीच काम करें तो उसको नीच वर्ण में गिनना चाहिए।'

इस विषय में कुछ पौराणिक सज्जन :–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।

यजुर्वेद के 31 वें अध्याय के 11 वें मंत्र का जो यह अर्थ करते हैं कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख से, क्षत्रिय बाहू से, वैश्य जङ्घा से और शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए हैं। इस अर्थ का प्रबल खण्डन करते हुए ऋषि दयानन्द ने जो लिखा है, उसका सारांश यही है, कि जो जगत् स्रष्टा, धर्त्ता एवं संहर्त्ता, जीवों के पाप–पुण्य फलों का व्यवस्थापक प्रभु, परमात्मा, सर्वज्ञ, सर्व–शक्तिमान्, सर्व व्यापक एवं निराकार है, अतः उसके मुख आदि अङ्ग होना सम्भव नहीं, तो उसके अङ्गों से वर्णों की उत्पत्ति तो आकाशकुसुम ही है।

शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों में इस मन्त्र की जो व्याख्या मिलती है, उसके अनुसार ही महर्षि ने इस पक्ष की स्थापना की है कि ब्राह्मण ज्ञानादि शुभ गुण, कर्मों की श्रेष्ठता के कारण इस मानव–समाज का मुख (मुख्य) है। जैसे शरीर में मुख अपने ज्ञानादि प्राप्ति के साधन ज्ञानेन्द्रियों से युक्त होने के कारण सब अङ्गों में श्रेष्ठ एवं उच्च माना जाता है, उसी प्रकार पूर्ण विद्या, ज्ञान, उत्तम आचार–विचार धारण करने के कारण ब्राह्मण को मुख्यता प्राप्त है। क्षत्रिय रक्षादि गुणों की प्रधानता के कारण बाहु, वैश्य अपनी व्यापार प्रवृत्ति के कारण देश–विदेश में प्रवेश कर धनार्जन से समाज को पुष्टि प्रदाता होने के कारण ऊरु समान, तथा शूद्र जड़ता मूर्खतादि के कारण ज्ञान विहीन होने से केवल शारीरिक

Scanned with CamScanner

सेवावृत्ति करने से पैरों के समान माना गया है।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मण चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमैवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च (मनु. १०।३५)

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।।१।।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।।२।।
आपस्तम्ब सूत्र प्र०२।पटल५। काण्डिका १०–११।

ब्राह्मणादि वर्णों के कर्म

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।।१।। मनु० १।८८।

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्
।।भगवद्गीता।। (१८–४२)

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्ति च क्षत्रियस्य समासतः ।।१।। मनु० १।८९।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।२।। मनु० १।४३।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक् पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ।।१।। मनु० १।९०।

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ।।१।। मनु० १।९१।

उल्लिखित प्रमाणों के आधार पर ब्राह्मण का कर्म वेद का पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना और लेना सर्व प्रकार की मानसिक पवित्रता, क्षमा, तप, ज्ञान–विज्ञान की उन्नति करना।

क्षत्रिय का कार्य न्याय शीलता के आधार पर प्रजा की रक्षा करना, दान देना, सुपात्रों की सेवा, अग्निहोत्रादि यज्ञों का अनुष्ठान, वेदाभ्यास, विषय–वासना से सर्वथा पृथक् रहना, राष्ट्रोत्थान के

Scanned with CamScanner

लिए प्रयत्नशील होना। शौर्य, बल, तेज, दक्षतादि गुणों से संयुक्त होकर यथा समय युद्ध में भी प्रवृत्त होना है।

वैश्य का कर्म सर्वोपकारक गाय, अश्वादि पशुओं की रक्षा करना, दानादि व्यवहारों से सुपात्रों को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखना, वेदाध्ययन, मनन, चिन्तन, कृषि व्यापारादि कार्यों से राष्ट्र को समृद्धशाली बनाना है।

शूद्र का कार्य—शूद्र वह है, जो उपरि लिखित वर्णत्रय के गुण, कर्म, स्वभाव से शून्य, वेदादि शास्त्रों के ज्ञान से रहित, प्रयास करने पर भी पढ़ाने से न पढ़ सके, ऐसे व्यक्ति का कार्य केवल यही है कि वह अपनी शारीरिक शक्ति से तीनों वर्णों के कार्यों में सर्व प्रकार की सहायता (सेवा) करे। स्मरणीय है कि शूद्र वर्तमान कालिक परम्परा के अनुसार अस्पृश्य, त्याज्य, घृणा की दृष्टि से देखने योग्य नहीं, अपितु वह आर्यों की वर्ण व्यवस्था का ही एक आवश्यक अङ्ग है। इन चारों वर्णों को अपने—अपने अधिकार एवं क्षेत्र में प्रवृत्त कराना राजा आदि सभ्यजनों का काम है। क्योंकि राजादि जनों की प्रेरणा तथा आदेश के बिना वर्ण व्यवस्था की स्थिति होना सर्वथा असम्भव ही है।

यद्यपि आर्य समाज सिद्धान्त रूप में उल्लिखित वर्ण व्यवस्था को मानता है, किन्तु मान्यता की अपेक्षा इसका व्यावहारिक पक्ष सर्वथा निर्बल प्रतीत होता है।

विवाह के प्रकार

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथा ऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।।१।।मनु० ३। २१।

उल्लिखित प्रमाण के आधार पर 1. ब्राह्म, 2. दैव, 3. आर्ष, 4. प्राजापत्य, 5. आसुर, 6. गान्धर्व, 7. राक्षस, 8. पैशाच ये आठ प्रकार के विवाह मनु महाराज मानते हैं। इन सभी विवाहों के जो लक्षण (परिभाषा) किए गये हैं, उनका सारांश निम्नलिखित है :—

Scanned with CamScanner

(1) वर कन्या दोनों ब्रह्मचर्यव्रतधारी, सुशील, शिक्षित धार्मिक हों तथा पारस्परिक प्रसन्नता से विवाह करें, वह ब्राह्मविवाह कहाता है।

(2) विस्तृत यज्ञ में वरण किए हुए ऋत्विक् को सालङ्कार कन्या दे देना 'दैव विवाह' कहाता है।

(3) वर से धनादि कुछ पदार्थ लेकर कन्या देना 'आर्ष विवाह' कहाता है।

टिप्पणी :

हम विद्वान् लेखक की इस बात से सहमत हैं क्योंकि वाञ्छित राज्य व्यवस्था के अभाव तथा आधुनिक समाज व्यवस्था की पृष्ठ भूमि में प्राचीन वर्ण व्यवस्था अव्यावहारिक हो गई है। और उसकी आड़ में जन्मगत जात पात को ही आश्रय मिल रहा है। ऐसी अवस्था में वर्ण व्यवस्था के सैद्धान्तिक आधार को तो स्वीकार किया जा सकता है किन्तु जन्मगत जात पात का प्रभावकारी निराकरण करके ही इस सैद्धान्तिक मान्यता की रक्षा की जा सकती है। — सम्पादक

(4) धार्मिक समृद्धि के लिए दोनों का विवाह होना 'प्राजापत्य विवाह' कहाता है।

(5) वर और कन्या दोनों को कुछ द्रव्यादि देकर विवाह करना 'आसुर विवाह' कहाता है। आजकल विवाह में प्रचलित दहेज लेना और देना इस प्रकार 'आसुरी विवाह' का द्योतक है।

(6) अनियम, असमय में किसी विशेष कारण वश माता पितादि सम्बन्धियों को बिना सूचित किए हुए स्वेच्छा से दोनों का विवाह होना 'गान्धर्व विवाह' कहाता है। वर्तमान में प्रचलित 'लव मैरिज' या 'कोर्ट मैरिज' इसी का अपभ्रंशरूप माना जा सकता है।

(7) युद्ध आदि में बलात्कार से छीनी हुई कन्या का विवाह 'राक्षस विवाह' कहाता है।

Scanned with CamScanner

(8) शयनावस्था में अथवा मद्यादि पान से प्रमत्त, बेहोश, कन्या के साथ बलात्कार संयोग करना (विवाह कर लेना) 'पैशाच विवाह' कहाता है।

विवाह के इन आठ प्रकारों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने से प्रतीत होता है, आदिम विधानवेत्ता मनु महाराज समाज में उत्पन्न होने वाली बुराइयों को भी वैवाहिक नियम शृङ्खला में बाँधकर मानव समाज को विशृंखलित, तथा विखण्डित होने से बचाना चाहते थे। उनके दृष्टिकोण से स्त्री–पुरुष का संयोग इन आठ अवस्थाओं में ही हो सकता था, अतः उन्होंने मानव–सुलभ मानसिक दुर्बलताओं को भी नियमित करने का प्रयास किया है। इन विवाहों में सामाजिक सुव्यवस्था एवं चरित्र गठन के दृष्टिकोण से 'ब्राह्म विवाह' सर्वोत्कृष्ट, 'दैव' और 'प्राजापत्य' मध्यम, 'आर्ष', 'आसुर', निकृष्ट 'राक्षस' और 'पैशाच' अधमाधम, महाभ्रष्ट माने गये हैं।

इसके पश्चात् विवाह की रीति–नीति क्या हो, इस विषय पर ऋषिराज ने जो विवाह प्रस्तुत किए हैं, उनका सारांश इस प्रकार है। जबकि विवाहेच्छुक लड़के, लड़कियों की विद्या समाप्ति या ब्रह्मचर्य व्रत समाप्ति में एक वर्ष शेष रहे, तब दोनों परस्परावलोकन, वार्तालाप आदि की प्रक्रिया, आयु, स्वास्थ्य, रङ्ग रूपादि की समानता, अनुकूलता, गुण, कर्म स्वभाव का सामञ्जस्य आदि का निर्णय श्रेष्ठ मान्य भद्र पुरुषों की देख रेख में होना चाहिए।

विवाह से पूर्व दोनों के लिए उत्तम स्वास्थ्यवर्द्धक खानपान आदि की पृथक् पृथक् पूर्ण व्यवस्था की जावें। जिससे विद्याध्ययन रूप तपश्चर्या, तथा कष्ट से जो दोनों दुर्बल शरीर हो गये थे, वे इस उपयुक्त व्यवस्था से पूर्ण स्वस्थ एवं चन्द्रकला के समान बढ़ कर थोड़े ही दिनों में हृष्ट–पुष्ट हो जावें। तब निश्चित शुभ, मुहूर्त, दिवस में माङ्गलिक वातावरण में समारोह पूर्वक यज्ञादि विधि–विधान सहित दोनों का विवाह–संस्कार सम्पन्न होना चाहिए।

Scanned with CamScanner

हमारी प्राचीन संस्कृति में सन्तानोत्पत्ति ईसाई धर्म की मान्यता के अनुसार पाप कर्म न होकर पवित्र कर्तव्य माना गया है, केवल विषय वासना ही उनका आधार नहीं है। वेद शास्त्र तथा प्राचीन ऋषि मुनियों और स्मृतिकारों की इसी मान्यता को आदर्श मान कर ऋषि दयानन्द ने इस विषय का प्रतिपादन किया है। उसी अनुक्रम में गर्भावस्था में पुंसवन, सीमन्तोन्नयन तथा जन्म के पश्चात् "जात कर्म" संस्कार का जो विधान है, उसके अनुसार बालक के जन्मोपरान्त विधि पूर्वक सावधानी से नाड़ीच्छेदन, स्नान, शुद्धता के पश्चात् यज्ञादि करने के बाद पिता को चाहिए कि वह सुवर्ण की शलाका से घी, शहद मिलाकर बालक की जिह्वा पर "ओ३म्" लिखे, तथा उसके कान में "त्वं वेदोऽसीति" (शत. ब्रा.) इस वाक्य को कहे। इस संस्कार का तात्पर्य यही है कि पिता प्रारम्भ से ही बालक को पूर्ण धर्मात्मा, आस्तिक तथा ईश्वर भक्त बनाना चाहता है। सोने की शलाका में बालक की जिह्वा पर ओ३म् का लिखा जाना भी इस विचार का प्रतीक है, कि पिता मानो सङ्केत कर रहा है, कि हे बालक ! तेरी जिह्वा पर सदैव प्रभु का निजी नाम ओ३म् विराजमान रहे। यह ओ३म् नाम मधु से भी मिठा, घृत समान गुणों से परिपूर्ण तथा सोने से भी अधिक मूल्यवान है। समाज में तेरे मुख से जो भी शब्द निकलें वे सदैव मीठे, गुण पूर्ण और कीमती हों।

बालक के कान में "वेदोऽसीति" शब्द का उच्चारण प्रकट करता है कि जीवात्मा ज्ञान का अधिकरण है, अतः उसको अपने भावी जीवन में आचार्य–परम्परा से प्राप्त नैमित्तिक ज्ञान के संयोग से ज्ञानी बनना है। क्योंकि मानव मात्र के जीवन का विश्रुत वाक्यानुसार पवित्र वेद (ज्ञान) के आश्रितशुभ कर्म एवं सदाचरण से ही सम्भावित है। अतः ये दोनों संस्कार मानव–समाज के लिए अत्यन्त उपादेय एवं महत्त्व पूर्ण हैं।

Scanned with CamScanner

गृहस्थ की दिनचर्या

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन् ।। मनु० ३।५०।
सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।। मनु० ३।६०।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया ।। मनु० ३।५६।
सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।। मनु० ५।१५६।
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ।। मनु० २।२४०।

स्वामी दयानन्द ने स्त्रियों के लिये पतिव्रता धर्म के समान पुरुषों के लिये भी एकपत्नी व्रत आवश्यक धर्म बताया है यहाँ तक कि स्त्रियों का पुरुषों से अधिक श्रेष्ठ स्थान देकर इन्होंने इस प्राचीन मान्यता का स्मरण दिलाया है कि जहाँ नारियों की पूजा अर्थात् सम्मान होता है वहाँ देवताओं का वास होता है।

इन प्रमाणों के आधार पर गृहस्थाश्रम की दिनचर्या का स्पष्ट दिग्दर्शन किया गया है। पुरुषों को उचित है, वे सदैव एक पत्नीव्रत का पालन करते हुए गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्य का पालन करें। जिससे कि शरीर में ओज, बल, तेज की वृद्धि के साथ स्वाभाविक प्रसन्नता, साहस, शौर्य, कार्य करने की क्षमता का उत्तरोत्तर विकास होता रहे। क्योंकि समाज में सदाचारी, संयमी मनुष्य सदैव आदर की दृष्टि से देखा जाता है, तथा दीर्घजीवी होता है, और दुराचारी निस्तेज, बल–हीन समाज में निन्दित और अल्पायु वाला होता है। इसी प्रकार जिस कुल में पति–पत्नी में पारस्परिक प्रीति, सन्तोष तथा विश्वास होता है, उस कुल में सदैव कल्याण

Scanned with CamScanner

ही कल्याण रहता है। और जहाँ अन्न खान–पान वस्त्राभूषणादि से स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ सभी कार्य सफल होते रहते हैं।

गृहिणी को चाहिए कि वह सदैव अपने पति तथा घर के अन्य जनों से सन्तुष्ट, प्रमुदित तथा विश्वस्त रहे। गृह–कार्यों में चातुर्य से भाग ले; सभी वस्तुओं को साज सँभाल कर रखे, गृह की स्वच्छता, सुन्दरता का ध्यान रखे। स्वास्थ्य–कारक स्वादिष्ट भोजन का पाकशाला में पाक करें; सदैव मधुर भाषण करें। यथा सम्भव छोटे–छोटे गृह उद्योगों का ज्ञान प्राप्त करे जिससे घर में अर्थाभाव न होने पावे। इस प्रकार मान्यजनों की सेवा–शुश्रूषा करने वाली शिक्षित स्त्रियाँ ही गृहिणीपद को सुशोभित करती हुई घर की लक्ष्मी, देवी कहलाती है।

ध्यान रहे ऋषि दयानन्द स्त्री–पुरुषों में किसी भी प्रकार की छुटाई बड़ाई को महत्त्व नहीं देते। उनकी धारणानुसार पति–पत्नी परस्पर सदैव समानभावेन वर्ताव किया करें। जैसे कि दिन–रात में दोनों जब जब परस्पर मिलें या पृथक् होवें तब तब प्रेम प्रसन्नता पूर्वक एक दूसरे को नमस्ते किया करें। इसी प्रकार का सत्कार पूजा कहाती है। दोनों को चाहिए कि वे सदैव आपस में मधुर व्यवहार करें; कटु वचन कभी किसी को कोई न बोले, अकारण झगड़ा न करें। कोई किसी की कभी निन्दा न करें। पति को उचित है कि वह अपनी पत्नी के पितृ –गृह की न्यूनता का वर्णन, अथवा अपनी पत्नी की निन्दा अपने मित्रों में अथवा पत्नी की सहेलियों के मध्य कभी न करें। इसी प्रकार पत्नी को भी चाहिए कि अपने पतिगृह की त्रुटियों का कथन अथवा पति सहित स्वजनों की बुराई कहीं भी कभी न करे। इसी प्रकार के पारस्परिक सद्व्यवहार से गृह में सदैव सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित रहेगा।

Scanned with CamScanner

गृहस्थ के नित्य कर्म

प्रत्येक गृहस्थ के लिये ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, तथा बलिवैश्वदेवयज्ञ का विधान है। ऋषि दयानन्द ने इसको 'महायज्ञ' नाम से व्यवहृत किया है। गृहस्थ का कर्तव्य है, कि इन पाँच यज्ञों का अनुष्ठान यथाशक्ति प्रतिदिन करे। इन महायज्ञों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

प्रथम ब्रह्मयज्ञ :– ब्रह्मचर्य सदाचार पूर्वक वेदादि सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय, महापुरुषों की सङ्गति, सन्ध्योपासना एवं योगाभ्यास करना ब्रह्मयज्ञ कहाता है।

द्वितीय देवयज्ञ :– विद्वानों का संग–सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण दातृत्व, विद्या की उन्नति और अग्निहोत्र करना देवयज्ञ है।

तृतीय पितृ–यज्ञ :– जीवित माता, पिता, आचार्य विद्वान् मनीषी उपदेशक, सच्चे योगियों, वृद्ध ज्ञानी महाशयों की सेवा करना पितृ–यज्ञ कहाता है। इस यज्ञ के "श्राद्ध और तर्पण" दो भाग हैं। श्राद्ध और तर्पण मृतकों का नहीं जीवित व्यक्तियों का ही होना चाहिए। श्राद्ध उस शुभ कर्म का नाम है, जो "श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत्क्रियते तच्छाद्धम्" अर्थात्–जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जावे वह श्रद्धा कहाती है और जो कर्म श्रद्धा सहित किया जाता है, वह श्राद्ध कहाता है। अतः उल्लिखित मान्य पुरुषों का खान–पान सम्मान वस्त्रादि से सत्कृत करना ही श्राद्ध हैं।

तर्पण :– इस शब्द का अर्थ तृप्त करना है। अर्थात् माता, पिता, आचार्य आदि पूज्य वृद्ध जनों को अपने सत्य आचरण, पवित्र जीवनचर्या, उनकी आज्ञा–पालन एवं शुभ कर्मों से उनको प्रसन्न एवं संतुष्ट रखना ही तर्पण है। ध्यान रहे इन दोनों क्रियाओं का सम्बन्ध केवल जीवित स्वजनों से है। मृतकों से इन क्रियाओं

Scanned with CamScanner

का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अतः वर्तमान काल में पितृपक्ष में मृतक स्वजनों के नाम पर जलाञ्जलि दान की प्रक्रिया सर्वथा हेय और अव्यवहार्य है।

चतुर्थ अतिथि–यज्ञ :– जिस क्रिया के द्वारा अकस्मात् अपने गृह पर आये विद्वान्, उपदेशक, परोपकारी साधु संन्यासी (जिनके आने की कोई तिथि निश्चित न हो) महात्मा को भोजन, वस्त्र, धनादि दान से सन्तुष्ट करना।

पञ्चम बलिवैश्वदेव या भूतयज्ञ :– पाकशाला में सिद्ध हुए भोजन में से क्षार लवणान्न रहित घृतमिष्ठादि संयुक्त पदार्थ की दश आहुति (चूल्हे की अग्नि सें पृथक् अग्नि में) देना तथा अपने भोजन से छः भाग अथवा यथाशक्ति कुछ अधिक भी गाय, कुत्ते, चींटी, पक्षियों को अथवा असमर्थ, असहाय रोगी मनुष्यों को दे देना बलिवैश्वदेव यज्ञ कहाता है।

वेद विरुद्ध आचरण करने वाले, वेदनिन्दक, दुष्टकर्मा, छल कपट से विडाल की तरह स्वार्थ साधना में तत्पर, हठी, दुंराग्रही, अभिमानी, व्यर्थ बकवास करने वाले, कुतर्की, जैसे (अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहं, शिवोऽहम्) आदि वाक्यों को सक्रिय मानने वाले, बगुले के समान ढोंग रचने वाले, झूठे योगी, नास्तिक मनुष्यों का वाणी मात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिए।

कितनी विडम्बना है, कि आज इस रोशनी के जमाने में भी अनेक अल्पज्ञ, एकदेशी, विषयी, लम्पट, अनाचारी मनुष्य भी अपने को ब्रह्म, प्रजापति, योगेश्वर, ईश्वर, अवतार आदि नामों से प्रसिद्धि प्राप्त करने में तत्पर हैं। तथा देश के शतशः भोले भाले, शिक्षित, अशिक्षित, धनी मानी व्यक्ति ऐसे लोगों को भी ईश्वर मानकर उनकी सेवा, अराधना में दिन रात लगे हुए हैं। यह देश का दुर्भाग्य ही है।

Scanned with CamScanner

गृहस्थ के लिए व्यावहारिक उपदेश

प्रत्येक गृहस्थ को प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठकर धर्म, अर्थ, शारीरिक रोग, उनके कारण एवं परमात्मा का चिन्तन करते हुए सदैव धर्माचरण करना चाहिए। अधर्माचरण से सदा बचना चाहिए। क्योंकि अधर्माचरण कभी न कभी अपना फल अवश्य दिखाता है। यहाँ देर हो सकती है, किन्तु अन्धेर नहीं।

धर्म के नाम पर पाखण्ड रचने वाले, दंभी, लंपट, लोभी, प्राणी हिंसक, धूर्त, बुरे पुरुष की संगति करने वाले ईर्ष्यालु, तथा स्वार्थी मनुष्यों से भी सम्पर्क नहीं रखना चाहिये।

इसीलिए जीवन में धर्म को महत्त्वपूर्ण मानकर धीरे–धीरे धर्म–संग्रह करना ही आवश्यक है। इसी धर्म की सहायता से मनुष्य घोर दुःख सागर संसार के अन्धकार को पार कर जाता है। **पवित्र आचार ही धर्म का स्वरूप माना गया है।** पवित्राचरण वाला मनुष्य दीर्घायुं वाला होकर और प्रजा में प्रिय हो जाता है, सम्पूर्ण बुराइयों को जीतकर वही अक्षय धन रूपी यश को प्राप्त करता है। इस धर्म की व्याख्या में यदि–

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।

इस परिभाषा को और जोड़ दिया जावें तो धर्म के लक्षणों में मणिकांचन संयोग हो जायेगा। मनु द्वारा उद्घोषित धैर्य, क्षमा, मन को वश में करना, चोरी का परित्याग, आन्तरिक और बाह्य पवित्रता, इन्द्रिय–संयम, शुद्ध बुद्धि विद्या, सत्य का आचरण, क्रोध न करना ये दश धर्म के लक्षण भी मानव जीवन को समुन्नति के शिखर पर आसीन करने वाले हैं। इस प्रकार धर्माचरण पूर्वक पति–पत्नि को सदैव पारस्परिक प्रेम एवं साहाय्य से अपने अपने कर्त्तव्य कर्मों के पालन में निरत रहना चाहिए।

Scanned with CamScanner

अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के लक्षण :-

इसके बाद पढ़ने वाले कैसे होने चाहिए ? इस आवश्यक विषय पर विवेचना की गई है । इस प्रसङ्ग में महाभारत उद्योग पर्व (विदुर प्रजागर) के निम्नलिखित प्रमाण द्रष्टव्य :–

(क) आत्म ज्ञानं समारम्भः० ।
(ख) निषेवते प्रशस्तानि. ।
(ग) क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति० ।
(घ) नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति० ।
(ङ) प्रवृत्तवाक् चित्रकथ० ।
(च) श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य० ।

इस विवेचन के आधार पर अध्यापक आत्म–ज्ञानी, सुख–दुःख, हानि–लाभ तथा मानापमान को समान समझने वाले धार्मिक, पवित्र मन वाले, शुभकर्मी, सदाचारी, परिश्रमशील, सुयोग्य, आस्तिक, श्रद्धावान्, कर्त्तव्यपरायण, वेद के विद्वान् होने चाहिए।

ऋषि दयानन्द ने पुनर्विवाह और विवाहोच्छेद के अनेक दोष गिनाये हैं जिनमें पाश्चात्य देशों में बढ़ते हुए तलाकों से बच्चों की दुर्दशा आदि दुष्परिणामों का आभास मिलता है। किन्तु विशेष अवस्था में स्वामीजी ने भी पुनर्विवाह तथा विधवा–विवाह का औचित्य स्वीकार किया है और इस प्रकार उन्होंने स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार दिये हैं।

बढ़ती हुई जन संख्या भारत की एक गम्भीर वर्तमान समस्या है। इसीलिये सन्तति–नियमन हमारे देश की राष्ट्रीय आवश्यकता है। प्राचीन समय में देश की जन संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम थी इसीलिये उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर प्राचीन आचार्यों ने सन्तानों की संख्या दस तक निश्चित की होगी जिसे

Scanned with CamScanner

स्वामीजी ने भी उद्धृत किया है। किन्तु प्रश्न संख्या का नहीं है वह इस बात का है कि समयानुसार सन्तति–नियमन का विधान उपयुक्त है । यह बात स्वामीजी ने भी इस प्रकार स्वीकार की है।

महर्षि दयानन्द का गृहस्थाश्रम विषयक यह विवेचन चौथे समुल्लास के अन्त में व्यक्त उन्हीं के शब्दों में समाप्त किया जाता है। जितना कुछ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहस्थाश्रम ही है जो यह गृहस्थाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहाँ से हो सकते थे जो कोई गृहस्थाश्रम की निन्दा करता है वह स्वयं निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वह प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहस्थाश्रम में सुख होता है जब स्त्री–पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान् पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहार के ज्ञाता हों। इसलिये गृहस्थाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

(सन्तानोत्पति का हमारी संस्कृति में एक पवित्र और नैतिक आधार है इसीलिये इस नैसर्गिक कामना को विवाह के समान अन्य स्वीकृत मर्यादाओं द्वारा भी सामाजिक और धार्मिक मान्यता दी जानी चाहिये। इस आधार पर ऋषि दयानन्द ने न केवल प्राचीन ऋषियों के विचारों और परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में आधुनिकतम मान्यताओं का बहुत पूर्व संकेत देकर अपने क्रान्तिकारी और दूरदर्शी दृष्टिकोण का भी परिचय दिया है —सम्पादक)



Scanned with CamScanner

हमारा प्रिय सत्यार्थप्रकाश

(1)

हमारे गुरु का आशीर्वाद, हमारे ऋषि का अमर विधान ।
मिटाकर जग का विषम विषाद, करेगा वही विश्व–कल्याण ।।
इष्ट फल देगा नित्य नवीन, कल्पपादप का पुष्पाभास ।
करे वह असत्–विचार विहीन, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

(2)

निगम का आगम का अवतार, भव्य भावों का भुवि भण्डार ।
प्रेम के पथ का पारावार, ज्ञान का गुण का रम्यागार ।।
चमकते जिसमें रत्न अनेक, नित्य प्रति पाते विविध विकास ।
सत्य का सागर बस वह एक, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश"।।

(3)

विविध पंथों का तामस तोम, भरा था भू पर भ्रम भरपूर ।
अखिल आच्छादित था वर व्योम, न कर सकता था कोई दूर ।।
गगन में हुआ ज्ञान विस्फोट, किया अज्ञान अंधेरा नाश ।
असत् पर मारी भारी चोट, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

(4)

किया द्रुत खण्ड खण्ड पाखण्ड, चलाकर तेज तर्क का तीर ।
आक्रमण हुआ प्रभूत प्रखण्ड, दम्भगढ़ गिरा सहित प्राचीर ।।
विलखते हैं मतवादी आज, करें कैसे किसकी अब आश ।
असत् पर गिरा गर्ज कर गाज, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश ।।

(5)

"सूर्य" में रहे रश्मियाँ सात, यहाँ चौदह पूरे उल्लास ।
"सूर्य" करता न प्रकाशित रात, सतत यह देता ज्ञान प्रकाश ।।
"सूर्य" पर छाते घन बरसात, ग्रहण में होता भारी ह्रास ।
किन्तु "सत्यार्थ" सदा अभिजात, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

-: रचयिता :-

(डॉ० सूर्यदेव शर्मा शास्त्री, साहित्यालंकार, एम. ए. डी. लिट्.)

अजमेर

Scanned with CamScanner

सुन्दर, साहित्य और सस्ते साहित्य प्रचार की योजना में सहयोग दीजिए

आर्य समाज अजमेर के निष्ठावान् विद्वान् डॉ. सूर्यदेव जी की 22 हजार रूपयों की उदार सहायता के कारण आर्यसमाज अजमेर ने 50 हजार रुपये व्यय करके सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला के 15 भागों की 75 हजार प्रतियां (प्रथम संस्करण), लागत से भी कम मूल्य पर वितरित की हैं।

क. इसी ग्रन्थमाला के समान ऋषि दयानन्द तथा वैदिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में हिन्दी अंग्रेजी ट्रेक्सट।

ख. स्वामी जी के पत्र व्यवहार पर आधारित उनके कार्य और विचारों का संकलन।

ग. आर्य समाज अजमेर के गत 100 वर्षों का इतिहास जिसमें ऋषि दयानन्द के अन्तिम वर्षों से सम्बन्धित समाज के अभिलेखों से प्राप्त विवरण।

उपर्युक्त एवं आवरण पृष्ठ संख्या 2 पर लिखित साहित्य के प्रकाशन में आर्थिक सहायता देने वाले सज्जनों के संबंध में प्रत्येक पुस्तक में निम्न प्रकार से उनके प्रति आभार व्यक्त किया जावेगा।

* पाँच सौ रुपये से एक हजार रुपये तक दान देने वालों के नाम का उल्लेख।
* एक हजार रुपये से तीन हजार रुपये तक देने वाले दान दाताओं का संक्षिप्त परिचय।
* तीन .हजार रु. से ऊपर देने वाले दान दाताओं का चित्र और परिचय।

दयानन्द शोध पीठ के प्रकाशन

दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज में दयानन्द शोध पीठ की स्थापना हो चुकी है। प्रति वर्ष उसकी ओर से नियमित रूप से महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों एवं मन्तव्यों पर महत्त्वपूर्ण शोध तथा उपयोगी साहित्य का प्रकाशन किया जा रहा है।

इसका उद्धृत साहित्य निम्न प्रकार है :–

		मूल्य
1	महर्षि दयानन्द पत्रों के दर्पण में	50.00
2	नासीद सृष्टि विज्ञान एवं दशवाद रहस्य	
3	त्रयी विद्या	
4	सार्वभौम वैदिक धर्म	
5	महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं की प्रासंगिकता	

प्राप्ति स्थान – **आर्य समाज, अजमेर**

Scanned with CamScanner